वर्तमान परिदृश्य में पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में मूल्य चेतना की आवश्यकता

डॉ. रेखा शर्मा
संपादक, विश्भरा मासिक पत्रिका, भोपाल (म.प्र.) भारत

शोध सारांश

वर्तमान समय मे अतिमहत्वकांक्षा और भौतिकता की अधिकता ने मनुष्य को मूल्यों के धरातल पर किस प्रकार धराशायी कर डाला है। यह आज परिवार एवं समाज में व्याप्त विकृतियों पर दृष्टिपात करते ही गहन चिंतन में डाल देने हेतु विवश करता हैं। परिवार रूपी संस्था जो कभी मूल्यों एवं आदर्शों की प्रथम पाठशाला हुआ करती थी, रात्री विश्राम की मात्र एक सराय बनती जा रही हैं। ईट और गेरू से बनी दीवारों में जीवन मूल्यों के दम घुटने की आह साफ दिखाई दे रही है। जहाँ पहले प्रेम दया करूणा रूपी संवेदनाओं के साथ वट वृक्ष रूपी वृद्वों का नेह व स्नेह बरसता था। आज वह सिर्फ अहम या हमारे लोभ के दायरे में सिमटता नजर आता है, साथ ही बच्चों की परवरिश के एवं व्यक्तित्व विकास के रूप में इलेक्ट्रॉनिक साधनों एवं नौकरो चाकरों का सहयोग पर्याप्त माना जा रहा है, जिससे घरेलू हिंसा एवं अपराधों की श्रेणी में भी इजाफा हुआ है। इनसे प्राप्त परवरिश एवं ज्ञान को लेकर जब युवा होता बालक समाज रूपी धरातल पर उतरता है, तो उसकी व्यवहारिकता का दायरा अत्यन्त ही संकुचित होता है, जिसमें संवेदनाओं का पानी सूख चुका होता है एवं एक प्रतिस्पर्धा का मस्तिष्क कार्य कर रहा होता है, जहाँ मूल्यों एवं विचारों के स्तंभ नहीं होते जिसकी नींव पर खड़ा युवा भ्रामक रास्तों एवं विकृत मानसिकताओं की दीमक की गिरफ्त में शीघ्र ही आ जाता है, जो न सिर्फ समाज को दूषित करता हैं। अपितु समस्त युवा वर्ग एवं भविष्य को भी खतरे में डालता हैं। अतः आज इस बात की महति आवश्यकता है कि भारतीय संस्कृति एवं मूल्य चेतना को पुनः जागृत किया जाये, जिससे भारत के गौरव, मूल्यों एवं संस्कृति को बनाये रखा जा सके।

I भूमिका

वर्तमान समय में परिवार एवं समाज का जो परिदृश्य दिखाई दे रहा है, उसे देखकर प्रत्येक विचारशील को यह सोचने हेतु मजबूर होना पड रहा है कि आज जो भी रीति नीतियां विसंगतिया व विकृतिया अपना वृहत रूप दिखा रही है, उनको बदलना बेहद जरूरी है जिस तेजी से आज परिवार एवं समाज में मूल्य चेतना का ह्रास दिखाई दे रहा है। वह भविष्य की विकट परिस्थितियों का संकेत प्रदर्शित कर रहा हैं। इन परिस्थितियों की शुरूआत आज या कल की देन नहीं अपितु तब से है जब अंग्रेज भारत में आये और उन्होंने भारतीय संस्कृति पर अपनी संस्कृति व मूल्यों की नींव डालना शुरू की, पाश्चात्य मूल्यों के प्रचारकों के द्वारा प्रचार और स्कूल कॉलेजों में शिक्षा के माध्यम से अपनी संस्कृति का प्रसार भारत में प्रारम्भ किया और तब से लेकर आज तक स्वतंत्र भारत में यह बढ़ा ही है कम नहीं हुआ हैं। वह समय था जब विश्व के विचारक साहित्यकार भारत से प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। भारत को अपना आदिगुरू मानते थे, इसे सभी विदेशी विद्वानों ने स्वीकार किया है, लेकिन आज हमारा देश इससे विपरित हो रहा है। आज हम साहित्य विचार और साधना के क्षेत्र में पश्चिम का अनुसरण कर रहें ह, जिसका परिणाम है कि वर्तमान में हमारे परिवारों में मूल्य खत्म होते जा रहे है, परिवार समाज की प्रथम सीढ़ी होती है और यही से समाज और राष्ट्र की भावी पीढ़ी तैयार होती है। इस प्रथम सीढ़ी में मूल्यों की जो गिरावट देखी जा रही है वह कही न कही पश्चिम का अंधानुसरण करने का प्रतिफल है, जो हमारे मूल्यों के लिये बडा खतरा है साथ ही इससे हममें भारतीयता का एवं अपनी संस्कृति का गौरव नष्ट होता जा रहा है एवं परिवार रूपी संस्था भी वर्तमान परिस्थितियों में भोंडी सराय बनकर रह रहे है। आज की परिस्थितियों में परिवार निर्माण संसार में हुए समस्त महान प्रयोजनों से अधिक बड़ा काम है और यह काम परिवर्तन और सृजन की दोहरी भूमिका निभाने वाला व समस्त समाज को प्रभावित करने वाला विशालतम् अभियान कह सकते है। परिवार निर्माण व समाज निर्माण की बातें बहुत होती है, परन्तु इसके लिए उत्तेजक किन्तु उथले प्रयत्न भी बहुत होते हैं। अब ठोस व सशक्त कदम उठाने की आवश्यकता है। उत्कर्ष चाहे एकाकी हो अथवा सामुदायिक उसके लिए व्यक्तियों को ढालना ही प्रधान कार्य है। यह ढुलाई मात्र परिवार की फैक्ट्री में ही हो सकती है, चरित्र एवं दृष्टिकोण के विकास परिष्कार के लिए वाणी से लेखनी से तथा प्रदर्शन आंदोलन से भी कुछ तो होता ही है, पर उसकी आधार भूमि बाल्यकाल से ही बनती है और यह कार्य परिवार संस्था के अतिरिक्त और कोई कर ही नहीं सकता। अतः सामाजिक समाधान से लेकर नव निर्माण तक के समस्त प्रयोजनों को सम्पन्न करने के लिए परिवार की प्रयोगशाला एवं पाठशाला का ही द्वार खटखटाना पड़ेगा।

II परिवार में मूल्य चेतना

इतिहास गवाह है परिवार निर्माण का कार्य संसार में अब तक हुए समस्त महान प्रयोजनों में सबसे बड़ा है। इसके लिये संगठित प्रयत्नों की आवश्यकता है, अब तक संसार में जितने भी बड़े प्रयास हुए है, वे सब संगठित प्रयत्नों से ही सम्पन्न हुए हैं। इतिहास व पुराणों में इसके कई उदाहरण मिलते हैं। देवताओं को तब विजय मिली जब वे संघ दुर्गा शक्ति का आश्रय लेकर सम्मिलित शक्ति व्दारा अनाचार से जूझने को कटिबध्द हुए। समुद्र मंथन की कथा में सम्मिलित प्रयत्नों की महत्ता का प्रतिपादन है, ग्वाल बालों की सहायता से गोवर्धन उठाना वानर सेना द्वारा समुद्र सेतु बांधना बुद्ध के परिव्राजकों और गांधी के सत्याग्रहियों द्वारा अन्याय से जूझना सर्व विदित है। ऋषियों के रक्त संचय से बना घट सीता के रूप में परिणत हुआ और

असुरों के विनाश का निमित्त बना धार्मिक मेलों एवं पर्व सम्मेलनों का आयोजन विचारशील वर्ग को एकत्रित करके और सामाजिक समस्याओं के समाधान में जुट पड़ना ही उद्देश्य होता है। संस्थाओं के वार्षिक एवं विशिष्ट सम्मेलन बुलाए जाते है, इनमें जन चेतना को समवेत करके और दिशा विशेष में लगाने के निमित्त ही इतनी खर्चीली और कष्ट साध्य व्यवस्था बनती हैं। तीर्थ पर्वो में धर्म प्रेमियों का एकत्रित होना एवं सामाजिक विषयों पर चर्चा का विषय प्राचीन काल में सो दृश्य ही हुआ करता था। आज भले ही यह परिभ्रमण या पुण्य अर्जन मात्र बनकर रह गया हो आज परिवार निर्माण हेतु इसी का अवलम्बन लेना पड़ेगा भारतीय जनता को इसी के आधार पर कोई विचार कोई तथ्य समझाया जा सकता है। वरना आज परिवार की परिभाषा को ही बदल दिया गया है, पहले जहाँ सयुंक्त परिवार हुआ करते थे, वहाँ मूल्यों की धरोहर भी हुआ करती थी बच्चों के जन्म से लेकर उनके लालन पालन में संस्कारों एवं विचारों की श्रेष्ठता देखी जा सकती थी। परिवारों के विघटन के साथ ही स्वरूप भी संक्षिप्त हो गया माता पिता और बच्चों तक सीमित परिवारों में मूल्यों के नाम पर शिक्षा के जो साधन बचे है वे इलेक्ट्रानिक है और इस पर दी जा रही नैतिक अनैतिक जानकारियों को हर वर्ग का व्यक्ति चाहे वह बच्चे हो, युवा हो या अधेड़ हो या नौजवान देखने में लगे हुए है, जो सार रहित अज्ञान परोसने मे लगे हुए है, जिसका परिणाम बिगड़ते सामाजिक स्तर से स्पष्ट दिखाई दे रहा है। जिस भारत का परचम संस्कारिता युवक युवतियों के कारण विश्व में लहराया हो जिन माता, पिता, भक्त, गुरूभक्त, धर्म भक्त, राष्ट्रभक्त, समाज भक्त, संतों महापुरूषों बलिदानियों और वीरांगनाओं ने अपने यौवन की तपिश से इतिहास को स्वर्णिम किया हो वहाँ के युवक युवतियाँ आज अपने अमर्यादित अशोभनीय एवं अश्लील आचरण से हमे गर्दन झुकाने को विवश कर रहे हैं। जिन धर्मशास्त्रों ने मातृदेवी भव पितृदेवों भव का संस्कार दिया था। वही जनक–जननी दो वक्त की रोटी को तरस रहे हैं।

जवानी में उन्मत्त युवाओं के लिए वृध्द माता–पिता, दादा–दादी अपदार्थ हैं, आज का युवा इस कदर रूखा हो चुका है, जिनमें न ही पहले जैसा शारीरिक सौष्ठव है, न देह है, न नेह है, न मृदल बोल है, और न ही सौम्य, शालीन, शिष्टाचार, व्यवहार है, उनके आचार–विचार अबुझ बनते जा रहे है, उनके अन्दर के संस्कार गुमशुदा हो चुके है, इन युवाओं का सारा जोश स्वार्थपूर्ति तक सिमट कर रह गया है। वैभव भोग विलास सीमाएँ लाँधने को बेताब हैं। युवतियां भी अब मर्यादाओं की कोई लक्ष्मण रेखा स्वीकारना नहीं चाहती। सौन्दर्य के नाम पर फूहड़ बाजरू फैशनेबल परेडों कार्यक्रमों विज्ञापनों का अंग बनाकर उन्होंने स्वंय को देवी स्वरूपा सम्मान से पृथक कर लिया है। बॉयफ्रैंड और मौज–मस्ती, भरी जिंदगी उसकी अनिवार्यता है। इस उच्छखृलता के लिए युवक–युवती, झूठ छल–कपट, द्वेष–अपराध के माध्यम से पतित हो रहे है। लेकिन सवाल फिर वहीं है कि इस बिगड़ेल, बेलगाम, बेखौफ, पीढ़ी की नकेल कौन कसेगा!

हर समाज की पहली और आखरी चिंता युवक युवतियों में बढ़ते कुसंस्कार होनी चाहिये। क्योंकि इसी युवा पीढ़ी पर आगत नीचे से उपर आता है या गर्त में समाता हैं। हमे विचार करना होगा। हर परिवार को चिंतन करना होगा कमी कहाँ रखी जा रही है, कहाँ चूक हो रही है, सुधार की आवश्यकता कितनी है। हमारी चुप्पी भी हमे गुनहगार बना सकती है। श्रीकृष्ण सरल की तरह युवाओं को संस्कारित करने की जिम्मेदारी का भरोसा समाज के अधिष्ठाता क्यों नही दिला रहे।

तुम अपना अपना तनिक हाथ दो मुझको।
मै मानवता की झोली भर दूंगा।
इन अल्हड़ दीवानों मस्तानों में से।
भगत सिंह आजाद खड़े कर दूँगा।

माता पिता से बालक को केवल शरीर ही प्राप्त नहीं होता मन भी प्राप्त होता है और संस्कार भी आचार, विचार, प्रवृति, अभ्यास, आस्था, विश्वास, जैसी आदतें माता पिता की होती है। ये अनुवांशिक होते है जातिगत संस्कार अनुवांशिक श्रेणी के माने जाते है, तदन्तर प्रथम गुरू माता होती है। गर्भस्य होने से दुनिया में आने तक शिशु अन्य अनेक संस्कारों को ग्रहण करता है। विद्वानों के अनुसार आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये पाँच चीजे गर्भ में ही रच जाती है। प्रहलाद को भक्ति संस्कार एवं अभिमन्यु को शौर्य संस्कार माँ के गर्भ में ही मिले थे।

अनुवांशिकता और माँ के संस्कार के अतिरिक्त बालक के लिए संस्कारों का तीसरा बड़ा स्त्रोत सामाजिक परिवेश है। जिस वातावरण माहौल में वह जन्मता, पलता, बढ़ता, खेलता, कूदता, लिखता, पढ़ता है, उस सब में उसके साथी संगी के आचरण व्यवहार से वह न सिर्फ प्रभावित होता है वरन् संगत पाकर संगत के रंग में रंग जाता हैं। आज सामाजिक मूल्यों की जो स्थिति है उससे भला कौन अनभिज्ञ है समाज में एक तरफ ऐसे बच्चे है जिन्हें शिक्षा के प्राथमिक साधन भी उपलब्ध नहीं है दूसरी और ऐसा वर्ग है जहां माता पिता को धन और प्रभुत्व की लिप्सा में चंद मिनटों की भी फुर्सत नहीं है कि वे उनके साथ भावात्मक संबंध महसूस कर सकें जिन्हें परम्पराओं व मर्यादाओं का संसार नहीं मिलता जर, जोरू, जमीन की सही परिभाषा नहीं मिलती उनसे भला क्या उम्मीद की जा सकती है? परिणाम आज समाज में स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। एक तरफ बाजारवाद में उलझती–घिसटती जिंदगी तो दूसरी तरफ नैतिक महाशून्यता में जकड़ा उन्मुक्त और निरंकुश आदमी जीवित प्राणियों की हत्या कर रहा है या मुँहमांगा दहेज न मिलने पर कन्या पक्ष के लोगों को सरे आम बेइज्जत कर देता हैं। भ्रष्टाचार कालाबाजारी चोरी–डकैती जैसी समस्याएं सुरसा की तरह अपना दामन पसारती जा रही हैं, जिसे जहाँ मौका हाथ लगता है लूटने खसूटने के लिए उधार बैठा है, दस बीस रूपये के झगडे में खून खराबा हो रहा है, कथनी और करनी में जमीन और आसमान का फर्क नजर आता है हर व्यक्ति समाज में अपने को ठगा सा महसूस कर रहा हैं।

III बाजार वादी प्रथा

जिस दौर से आज हम गुजर रहे है वह वैश्वीकरण का दौर है जहाँ आचार–विचार या संस्कार की कोई कींमत नहीं हैं जहाँ हर चीज के मोल का निर्धारण वह बाजार करता है, जो एक ऐसी आतेभौतिकता वादी पीढ़ी को तैयार कर रहा है, जो भविष्य के घोडो की लगाम चाहती है। वर्तमान के एक–एक क्षण का शिकार जो प्रतिमान जो मूल्य मर्यादाएँ और परम्पराएं कभी हमारे अस्तित्व की सार्थकता बतलाते थे और एक बेहतर जीवन यापन के संतुलित तरीकों से मनुष्य को सराबोर करते थे आज मनुष्य उन्हीं आदर्शों एवं नियमों से मुक्त होकर हल्का होने की चाहत मे एक ऐसी संवेदनहीन जीवन शैली की और उन्मुख हैं जहाँ दूसरों के हित कल्याण के विषय में चिंतन करने की कोई भी संभावना शेष नहीं हैं।

नितांत निजी और एकांत वैयक्तिकता के इस उफान में आज मनुष्य जिस सभ्यता को सूचना प्रौद्यौगिकी के विकास के साथ अपना रहा हैं। वह समाज मे एक ऐसा अलगाव उत्पन्न कर रही है जो सामाजिक राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय सभी स्तरों पर आत्मघाती हैं।

सुविधाओं एवं साधनों के अम्बार तो खड़े हो गये है, परंतु इनके साथ ही दुर्बलता और रूग्णता दिन–रात बढ़ती जा रही हैं। आहार–विहार में बढ़ा हुआ असंयम स्वस्थ जीवन के मूलभूत आधार को ही नष्ट किये दे रहा है। दुर्व्यसनों और प्रदर्शनों के निमित्त होने वाले अपव्यय की इतनी वृद्वि हुई है कि हर कोई अपने को अभावग्रस्त अनुभव करता है। बढते हुये अविश्वास, असहयोग, अनाचार के पीछे चरित्र भ्रष्टता ही मूल कारण है।

क्रोध से क्रोध और अनाचार से अनाचार बढ़ता है। यह विषमता आज संसार के समूचे जलाशय पर जलकुम्भी की काई की तरह छायी दीखती है और जलाशय से मिलने वाले लाभों का अन्त हो रहा है। पथभ्रष्ट को किस प्रकार कँटीली झाड़ियों से संत्रस्त होना पड़ता है, इसे सर्वत्र घटित होते देखा जा सकता है।

प्रदूषण, विकिरण, पर्यावरण, अपराध, छल आदि के जो संकट व्यापक रूप से गहरा रहे हैं, उनकी परिणति की कल्पना और चिन्ताजनक है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए आवश्यक साधन जुटा सकना कठिन प्रतीत होता जा रहा है। अवांछनीयता और वातावरण में व्याप्त विपन्नता कैसे पनपी? इसका उत्तर वस्तुओं की कमी होने की बात कहने से नहीं मिल सकता। मानना यही पड़ेगा कि विचार क्षेत्र में बढ़ती हुई उदण्डता का, आपा–धापी का प्रदूषण ही उन समस्याओं के लिए उत्तरदायी है, जो अप्रसन्नता और अव्यवस्था का निमित्त बनी हुई है।

IV मूल्यांकन

संक्षेप में यही निष्कर्ष निकलता है कि नीति–निष्ठा और समाज निष्ठा के आदर्शों की अवहेलना करने पर ही समूचा मनुष्य समुदाय उस विपत्ति में फँसा है, जिससे निकलना और उबरना असंभव नही तो कम से कम सहज तो प्रतीत नहीं होता है। आशा की किरण एक ही है, लोकमानस का परिष्कार, आदर्शों का परिपालन, विचारों का परिशोधन, चरित्र और प्रयासों में आदर्शों का सम्पुट लगाया जाना। उसके बिना प्रस्तुत असंख्य समस्याओं में से एक का भी सीधा समाधान मिलना संभव नहीं है।

उन्नत विचारधारा किसी भी समाज की उष्मा, उर्जा एवं गतिशीलता की प्रतिबिम्ब होती हैं। जिस समाज में जितनी अधिक सक्रियता होती है, किसी भी क्षेत्र की वैचारिक प्रगति को समझने एवं आत्मसात करने की जितनी तैयारी होती है, उस समाज के मूल्य एवं विचारधारा उतनी ही जीवंत और क्षमतावान होती हैं। इसके विपरीत जिस समाज में यथास्थिति के दुराग्रह जितने तीव्र होते हैं, वैश्विक परिवर्तनों को समझने के प्रतिकार का भाव जितना गहरा होता है, वह सामाजिक परिवेश उतना ही जड़ हो जाता है और अवांछनीय दबावों से घिरकर आलोचना का शिकार बन जाता है। यहाँ यह भी ख्याल रखना होगा कि हर चमकती चीज सोना नहीं होती, अतः यदि अपने मूल्यों को बचाए रखना है, तो बदलने परिवेश की सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रवृत्तियों के मध्य अंतर स्पष्ट करने का विवेक विकसित करना होगा। एक मर्यादित शिक्षा प्रणाली एवं बुध्दिजीवी वर्ग की सजगता का मणिकांचन योग इस संदर्भ में लाजिमी होगा ।

संदर्भ ग्रंथ

[1] अखण्ड ज्योति वर्ष 2013 अंक 09

[2] प्रतियोगिता निर्देशिका गुमास्तानगर, इन्दौर

[3] संगीता